किशोर सिंह रतनसिंह जडेजा

बनाम

मारुति कॉर्पोरेशन एवं अन्य

(सिविल अपील संख्या 2186-2187/2009)

6 अप्रैल, 2009

[न्यायाधिपतिगण अल्तमस कबीर एवं साईफ्रेक जोसेफ]

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908:

आदेश 39 नियम 1 और 2- अंतरिम निषेधाज्ञा- अंतरिम निषेधाज्ञा- विचार किए जाने वाले सिद्धांत- अनुबंध के विशिष्ट अनुपालना के मुकदमे से उत्पन्न होने वाली अपील में उच्च न्यायालय ने निर्देश दिया कि संपत्ति का कोई भी हस्तांतरण निर्णय के अधीन होगा - वाद के अंतरिम आदेशों द्वारा वाद की भूमि पर भूखंडों की बिक्री पर रोक और खरीदारों को किसी भी तरह के निर्माण किये जाने से रोकने का दिया गया आदेश- पहले का आदेश लम्बित वाद के सिद्धांत पर पारित किया गया था, जैसा कि संपत्ति अन्तरण अधिनियम की धारा 52 में निहित है और जिन हस्तांतरणकर्ताओं ने भूखंड प्राप्त किए, जब स्थानांतरण के मालिकों के खिलाफ कोई निषेधाज्ञा नहीं थी- वाद का आदेश स्थिर रखने योग्य नहीं हैं- बाद के गुप्त

आदेश थे, जो मालिकों को सुनवाई का मौका दिए बिना और बड़ी जल्दबाजी में पारित किये गये थे, जिसमें सुनवाई और उसे पारित करने का कोई कारण बताए बिना, आवश्यक बुनियादी सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए आदेश पारित किए गए थे--आदेश 39 नियम 1 और 2 के तहत आदेश पारित करते समय विचार किया जाना चाहिए और इसके अलावा उच्च न्यायालय ने इस बात पर विचार नहीं किया कि मुकदमा 19 साल की लंबी चुप्पी के बाद दायर किया गया था, जिसके बाद उच्च न्यायालय ने दरकिनार कर अंतरिम आदेश पारित किए कि अपील पर शीघ्रता से फैसला करेगा। तत्काल अपीलों में, सम्पत्ति हस्तान्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 52- साम्या के सिद्धांत के आधार पर तर्क दिया गया कि अपीलार्थी और वाद भूमि के साथ ही अन्य संयुक्त मालिक, हस्तांतरणकर्ताओं के पक्ष में पहली अपील में उच्च न्यायालय ने तत्काल प्रभाव से एक अंतरिम आदेश दिनांकित 29.2.2008 पारित किया जाकर विचाराधीन संपत्तियों से निपटाया गया था। किसी भी तरह से, वही निर्णय के अधीन होगा। अपील में, संपत्ति के अलगाव पर कोई रोक नहीं थी; 280 भूखंड बेचे गए और खरीदारों ने अपने-अपने स्थानों पर निर्माण शुरू कर दिया, इसलिए उच्च न्यायालय ने, बाद के आदेशों को पारित करने में गलती की। अर्थात् जिन परिस्थितियों में अपीलों का निपटारा करते हुए, न्यायालय ने मालिकों को जमीन बेचने से रोकना, निर्माणों को रोकते हुए

सुनवाई का अवसर दिए बिना आदेश दिनांक 22.4.2008 और 7.5.2008 पारित किये गये।

अभिनिर्धारित किया गया-

1.1. यह अच्छी तरह से स्थापित है, कि एक पारित करते समय या के तहत निषेधाज्ञा का अंतरिम आदेश 39 नियम 1 और 2 सी. पी. सी. के तहत न्यायालय को निम्नांकित तीन बुनियादी सिद्धांतों पर विचार करने की आवश्यकता हैः-

(i) प्रथम दृष्टया मामला;

(ii) सुविधा और असुविधा का संतुलन और

(iii) अपूरणीय क्षति और हानि।

इनमें से किसी भी सिद्धांत पर उच्च न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया गया और न ही प्रतिवादी संख्या 1-निगम की ओर से मुकदमा दायर करने में 19 वर्षों की लंबी चुप्पी को ध्यान में रखा गया- वाद में उच्च न्यायालय द्वारा 22 अप्रैल, 2008 और 7 मई, 2008 को दूसरा और तीसरा अंतरिम आदेश पारित किया गया। [पैरा 22] [541-बी-ई]

1.2. उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने 29 फरवरी, 2008 को आदेश पारित करने के उपरान्त संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 के अपने

आदेश में 22 अप्रैल, 2008 यह पाया गया कि जब पहली अपील स्वीकार की गई थी और विचाराधीन संपत्ति के संबंध में विवाद का मामला था और एक आदेश, जो दिनांक आदेश 29.2.2008 को पारित किया गया, वह प्रारम्भिक आदेश के विपरीत था। [पैरा 21] [540-एच; 541-ए-बी]

1.3. पुनः 7 मई, 2008 के आदेश में निर्देश दिया गया कि विवादित भूमि पर कोई निर्माण न किया जाए, जिसका असर उन 280 हस्तांतरणियों पर पड़ता है, जो किशनसिंह रतनसिंह जडेजा बनाम में थे। उनके निर्माण को ऊपर उठाने की प्रक्रिया- भूखंडों को उस समय प्राप्त किया गया, जब कोई निषेधाज्ञा नहीं थी। भूमि मालिकों के खिलाफ लागू किया गया था, इसे पारित करने का कोई कारण भी नहीं है। इस बात पर विचार करना कि हस्तांतरणकर्ता प्रतिकूल रूप से प्रभावित होंगे, इस तथ्य को स्वीकार किए बिना ही पारित कर दिया गया। [पैरा 18 और 19] [540-बी-एफ]

मंडली रंगन्ना और अन्य बनाम टी. रामचंद्र (2008) 11 एसे. सी. सी. 1, संदर्भित।

1.4. 7 मई, 2008 को अंतरिम आदेश पारित करते समय उच्च न्यायालय को इसके प्रभाव पर विचार करना चाहिए था, जिसका आदेश उन 280 हस्तांतरणकर्ताओं पर होगा जिन्हें भूमि का कुछ हिस्सा पहले ही बेच

दिया गया था और जिन्होंने उस पर निर्माण शुरू किया था, विशेष रूप से जब वे पक्षकार भी नहीं थे और न ही उनहें अपील में आदेश दिए जाने से पहले सुना गया कि उन्हें निर्माण कार्य जारी रखने से रोक दिया गया है। इस तरह के आदेश से तीसरे पक्षकार के अधिकारों को प्रभावित किया जा सकता है, क्योंकि वे कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे, इसलिए उस आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता है, जिस तरीके से कहा गया, उसे ध्यान में रखते हुए आदेश पारित किया गया। [पैरा 23] [541-ई-जी]

2.1. जहाँ तक भूमि परिवर्तन का संबंध है, जो अपीलार्थी और अन्य संयुक्त मालिकों को 22 अप्रैल, 2008 के दूसरे आदेश द्वारा अलग होने से रोक दिया गया है, जिसे मामले में 22 अप्रैल, 2008 के आदेश से अलग रखा गया है, शेष प्रत्यर्थी संख्या 1 को धन के रूप में मुआवजा दिया जा सकता है और उसे कोई अपूरणीय हानि और क्षति नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि संपत्ति के मालिकों को प्रतिबंधित किया जाता है तो इसकी वजह से वे गंभीर पूर्वाग्रह से बचेंगे, क्योंकि वे सम्पत्ति के लाभ से वंचित हो जाएंगे। उक्त अवधि के दौरान अपनी भूमि का उपयोगकर्ता का सुविधा और असुविधा का संतुलन इस तरह के निषेधाज्ञा के विरूद्घ है। प्रत्य संख्या विशिष्ट के लिए द्वारा दायर किए गए विनिदिष्ट अनुतोष की पालना के दावे सफलता काफी हद तक उस समझौते की वास्तिवकता के कमजोर सबूत निर्भर कररती है जिसे 19 वर्षों के बाद विचारण न्यायालय के इस

निस्कष्र के बाबजूद कि मुकदमा सीमा से ब कहा कि मुकदमा सीमा से वर्जित नहीं था। उसे लागू करने की मांग की गई थी। [पैरा 24] [542-सी-एफ]

2.2. प्रत्यर्थी संख्या 1 के आचरण का प्रश्न भी प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि19 वर्षों से अधिक समय तक उसके अधिकारों पर कब्जा करने बाद, संपत्ति के मालिकों को उसी से निपटने के लिए रोकना उसके अधिकारों पर असमान होगा। विशेष रूप से यह ध्यान में रखते हुए कि भूमि का बडा हिस्सा पहले से ही 280 खरीदारों को दे दिया गया है जो खरीद प्रक्रिया में एवं उसके निर्माण कार्य में लगे हुए हैं। [पैरा 25] [542-जी-एच; 543- ए]

3. एक एसे आदेश के लिए एक आवेदन, जो बहुत जो बहुत दूर होगा और व्यापक परिणाम की मांग की गई थी जिसके लिए खंडपीठ द्वारा अगले दिन विरोध करने का मौका दिए बिना निपटाया गया। हालाँकि, यह ध्यान में लाया गया इसमें उन लोगों पर भी आरोप लगाए गए जो मुकदमें में पक्षकार थे। पीठ ने कहा कि 280 खरीदार के पक्ष में हस्तांतरण निष्पादित किया गया था। यह ऐसा मामला नहीं है जहाँ अपीलार्थी और अन्य सह-मालिकों ने किसी भी प्रतिबंध आदेश का उल्लंघन किया था। भूखंडों को स्थानांतरित करने में उच्च न्यायालय द्वारा पारित उक्त 280 हस्तांतरणकर्ताओं के हित उक्त स्थानान्तरण एक समय पर

प्रभावित हुए थे जब कोई नहीं था। अपीलार्थी के विरुद्ध निषेधाज्ञा या निरोध आदेश और जिन्हें संपत्ति के अन्य मालिक कहा गया है और जहाँ तक स्थानान्तरण का संबंध है, एकमात्र आदेश जो हो सकता है, उक्त आवेदन पर पारित किया गया धारा ५२ लंबित बाद के सिव्द्नातं आधारित आदेश है जो 29 जनवरी, 2008 को पहली बार पारित किया गया था, इसलिए हस्तांतरणकर्ताओं पर प्रतिबंध आदेश को गलत माना जाना चाहिए और इसे दरकिनार किया जाना चाहिए। [पैरा 23] [541-जी-एच; 542-ए-बी]

4. उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा 22 अप्रैल, 2008 और 7 मई, 2008 को एफ-ए नंबर 853/2008 एवं सी.ए. नंबर 2405/2008 में जो आदेश पारित किए गए उन्हें आपस्त किया जाता है एवं 29 फरवरी का प्रारंभिक आदेश, 2008 यथावत रखा जाता है। उच्च न्यायालय इससे संबंधित लंबित अपीलों का शीघ् निपटारा करेगा। [पैरा 27] [543 बी-सी]

संदर्भित न्यायिक द्रष्टांत - (2008) 11 एस सी सी संदर्भित पैरा 12

1. **सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकारिता न्यायनिर्णयः सिविल अपील संख्या 2186-2187/2009**

गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के सिविल आवेदन सं. 181/1982 में पारित निर्णय व आदेश दिनांकित 22.04.2008 से।

मुकुल रोहतगी, टी. महिपाल, कविन गुलाटी, रश्मि सिंह, अवनीश

पांडे और विमल एम. पटेल अपीलार्थी की ओर से।

अरुण जेटली, सोली जे. सोराबजी, रंजीत कुमार, हुज़ेफा अहमदी, राजेश दवे, एजाज मकबूल, तौना सिंह, ओर्दुमन गोहिल, माणिक करंजावाला, रूबी सिंह आहूजा, एम. और. शमशाद, मुकेश वर्मा और यश पाल ढींगरा- प्रत्यर्थी उतरदाता की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **न्यायाधिपति अल्तमास कबीर** द्वारा दिया गया।

1. अपील सुनवाई की मंजूरी दी गई।

2. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी संख्या 2 से 7 तक गांव नानामौवा, तालुका और जिला राजकोट में स्थित सर्वेक्षण संख्या 36 में 32 एकड़ और 38 गुंठा कृषि भूमि के मालिक हैं 38 गुंठा (जिसे इसके बाद 'वादग्रस्त भूमि' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) 19 मार्च, 1980 को, अपीलकर्ता और वाद भूमि के अन्य संयुक्त मालिकों ने शहरी भूमि की धारा 20 के तहत आवश्यक अनुमति प्राप्त करने पर उक्त भूमि के विकास के लिए प्रस्तावित सहकारी आवास सोसायटी - तिरुपति सहकारी आवास सोसायटी के साथ एक समझौता किया। (सीलिंग और विनियमन) अधिनियम, 1976 (इसके बाद इसे 'भूमि सीलिंग अधिनियम, 1976' के रूप में संदर्भित किया जाएगा) कमजोर वर्गों के लिए छूट और घरों के निर्माण के लिए। भूमि सीमा अधिनियम, 1976 की धारा 20 के तहत 29 अप्रैल, 1988 को

प्रस्तावित सोसाइटी द्वारा किया गया आवेदन खारिज कर दिया गया था और अपीलकर्ता और अन्य संयुक्त मालिकों के अनुसार, प्रस्तावित सोसाइटी को ऐसी अनुमति प्राप्त करने में विफलता पर समझौता किया गया जिसे निष्पादित नहीं किया जा सका और इसलिए, सार्वजनिक सूचना दिनांक 24 अप्रैल, 1988 द्वारा समझौते को रद्द घोषित कर दिया गया।

3. शरद एन. आचार्य, अधिवक्ता से एक कानूनी नोटिस प्राप्त हुआ था, जिसमें इस बात से इनकार किया गया था कि समझौता रद्द कर दिया गया था, जैसा कि सार्वजनिक सूचना में दर्शाया गया है। समझौते को रद्द करने के बावजूद, प्रतिवादी नंबर 1 ने अपीलकर्ता को उक्त भूमि के विकास के लिए उक्त प्रतिवादी के साथ निष्पादित दिनांक 19 मार्च, 1980 के समझौते को प्रभावी करने के लिए बुलाया। इसके बाद प्रतिवादी नंबर 1 ने अपीलकर्ता के खिलाफ राजकोट के सिविल कोर्ट के समक्ष 29 नवंबर 1999 को विशेष सिविल मुकदमा संख्या 299/1999 दायर किया, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह घोषणा करने की प्रार्थना की गई कि प्रतिवादी नंबर 1 के पास उक्त भूमि और उक्त समझौते के विशिष्ट निष्पादन के लिए एक डिक्री के लिए एवं विकल्प के रूप में, 1,81,000/- रुपये की बयाना राशि और 16,30,670/- रुपये की क्षति राशि 12% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के साथ वापस करने का आदेश दिया जाए। प्रतिवादी नंबर 1 ने अपीलकर्ता को उक्त भूमि में प्रवेश करने और प्रतिवादी नंबर 1 के

कब्जे में गड़बड़ी करने से रोकने और अपीलकर्ता को किसी तीसरे पक्ष को भूमि हस्तांतरित करने से रोकने के लिए अंतरिम निषेधाज्ञा के लिए एक आवेदन भी दायर किया। राजकोट के सिविल कोर्ट ने अपने आदेश दिनांक 29 अप्रैल, 2002 द्वारा उक्त आवेदन को खारिज कर दिया, जिसके खिलाफ प्रतिवादी नंबर 1 ने गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष आदेश संख्या 372/2000 से अपील दायर की, जिसे अंततः मुकदमा का १0 महीने की अवधि के भीतर शीघ्र निपटारा करने के निर्देश के साथ वापस ले लिया गया। 1 इसके बाद मुकदमे को राजकोट के सिविल कोर्ट में सुनवाई के लिए ले जाया गया और 23 नवंबर, 2007 के फैसले और आदेश द्वारा, विशिष्ट निष्पादन के लिए प्रार्थना को खारिज करते हुए, ट्रायल कोर्ट ने बयाना राशि वापस करने का निर्देश दिया।

4. इसके बाद, प्रतिवादी नंबर 1 ने 15 फरवरी, 2008 को प्रथम अपील संख्या 853/2008 के साथ एक आवेदन, सिविल आवेदन संख्या 2405/2008 के साथ, अन्य बातों के अलावा, उत्तरदाताओं को अपील के निपटारे तक संबंधित भूमि को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करने या हस्तांतरित करने से रोकने के लिए दायर किया गया, चूँकि अपीलकर्ता उच्च न्यायालय के समक्ष कैविएट पर था, पक्षों को सुनने के बाद, गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपील को स्वीकार कर लिया, जैसा कि प्रार्थना की गई थी, लेकिन कोई रोक नहीं लगाई, और केवल यह निर्देश

दिया कि यदि प्रश्न में संपत्ति का निपटान किया गया था किसी भी तरह से, वह अपील के निर्णय के अधीन होगा।

5. हालाँकि, प्रतिवादी नंबर 1 अपील में निषेधाज्ञा का कोई भी आदेश प्राप्त करने में विफल रहा, उसने 7 मार्च, 2008 को अपने विद्वान वकील के माध्यम से एक सार्वजनिक नोटिस जारी किया, जिसमें जनता से संपत्ति का सौदा न करने के लिए कहा गया। इसके जवाब में, अपीलकर्ता ने 10 मार्च, 2008 को एक सार्वजनिक नोटिस भी प्रकाशित किया, जिसमें स्पष्ट किया गया कि गुजरात उच्च न्यायालय द्वारा कोई निषेधाज्ञा आदेश पारित नहीं किया गया था। उक्त तथ्य को प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा एक अतिरिक्त हलफनामे के माध्यम से गुजरात उच्च न्यायालय के ध्यान में लाया गया था, जिसके आधार पर उच्च न्यायालय ने 22 अप्रैल, 2008 को एक आदेश पारित किया, जिसमें निर्देश दिया गया कि प्रश्नगत संपत्ति बेची नहीं जाना चाहिए।। इसके बाद, 6 मई, 2008 को, प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा लंबित प्रथम अपील में निषेधाज्ञा संख्या 5618/2008 के लिए एक और आवेदन दायर किया गया था, जिसमें दर्शाया गया था कि प्रश्नगत भूमि में पर निर्माण किए जा रहे थे। उपरोक्त के आधार पर, गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने 7 मई, 2008 को इन अपीलों पर निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"इस आवेदन के माध्यम से, आवेदक के विद्वान वकील का

कहना है कि इस अदालत के दिनांक 29.02.2008 और 22.04.2008 के आदेशों के बावजूद, विवादित भूमि पर निर्माण किए जा रहे हैं। विद्वान वकील श्री पाहवा, प्रतिवादी नंबर 2 का कहना है कि निर्माण लगभग 6 महीने पहले किए गए थे, और संपत्ति का कुछ हिस्सा पहले ही बेच दिया गया था। आगे की जटिलताओं और मुकदमों की बहुलता से बचने के लिए, हम आदेश देते हैं कि विवादित भूमि पर कोई निर्माण न किया जाए। हमारे निर्देश के बावजूद, यदि आगे निर्माण किया जाता है, तो आवेदक संबंधित पुलिस प्राधिकरण से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र होगा, और संबंधित पुलिस प्राधिकरण को विवादित भूमि पर निर्माण को रोकने के लिए तत्काल कदम उठाने का भी निर्देश दिया जाता है। सिविल आवेदन का निपटारा किया जाता है।"

6. अपीलकर्ताओं की ओर से अपील करते हुए, श्री मुकुल रोहतगी ने प्रस्तुत किया कि प्रतिवादी नंबर 1, मारुति कॉर्पोरेशन (मुकदमे में वादी), 21 जून, 1989 को एक साझेदारी फर्म के रूप में पंजीकृत हुआ, लेकिन उसने एक विशिष्ट प्रदर्शन की मांग की है 19 मार्च, 1980 को अपीलकर्ता के साथ किए गए कथित समझौते को 17 मार्च, 1990 के एक गैर-न्यायिक स्टाम्प पेपर पर निष्पादित किया गया। श्री रोहतगी ने आग्रह

किया कि यह स्पष्ट है कि वादपत्र में प्रतिवादी नंबर 1 का दावा सही है । कोई वैध, कानूनी और/या तथ्योंत्मक आधार नहीं था, जिसके आधार पर उच्च न्यायालय द्वारा अंतरिम आदेश पारित किया जा सकता था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अपील में लगाए गए तीन आदेशों में से कोई भी बोलते हुए क्रम में या तर्कपूर्ण आदेश नहीं थे। जैसा कि आदेशों से स्वयं पता चलता है, वे समय-समय पर न्यायालय के ध्यान में लाए गए नए तथ्यों की प्रतिक्रिया मात्र थे और अपीलकर्ता या अन्य इच्छुक पक्षों को आरोपों को पूरा करने का उचित अवसर दिए बिना ही उसके आधार पर आदेश पारित किए गए थे। या उसी पर सवाल उठा रहे हैं. श्री रोहतगी ने प्रस्तुत किया कि खंडपीठ द्वारा पारित कई अंतरिम आदेश बिना किसी कारण के थे और रद्द किए जाने योग्य थे।

7. श्री रंजीत कुमार, विद्वान वरिष्ठ वकील, जो प्रतिवादी क्रमांक 2 से 7 की ओर से उपस्थित हुए, जो अपीलकर्ता के साथ संपत्ति के संयुक्त मालिक थे, श्री रोहतगी की दलीलों को स्वीकार करते हुए, उन्होंने यह तर्क देकर पूरक किया कि मूल समझौता तिरूपति कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी ने शर्त लगाई कि उक्त प्रस्तावित हाउसिंग सोसाइटी को छूट के लिए भूमि सीमा अधिनियम, 1976 की धारा 20 के तहत अधिकारियों को आवेदन करना होगा और खाली भूमि पर निर्माण करने की अनुमति देनी होगी। विद्वान वकील ने प्रस्तुत किया कि इस तरह का आवेदन तिरूपति

सहकारी हाउसिंग सोसायटी द्वारा किया गया था, लेकिन इसे खारिज कर दिया गया था और इस तरह की अस्वीकृति पर, भूमि के मालिकों और प्रस्तावित तिरूपति सहकारी हाउसिंग सोसायटी के बीच समझौते को बंद करने की सार्वजनिक घोषणा की गई थी।

8. श्री रंजीत कुमार ने आग्रह किया कि संपत्ति के मालिकों ने कभी भी मारुति कॉर्पोरेशन-प्रतिवादी नंबर 1 के साथ कोई समझौता नहीं किया था, जिसने उसी चेक पर भरोसा करते हुए, तिरूपति सहकारी हाउसिंग सोसाइटी द्वारा दायर किए गए मुकदमे के समान मुकदमा दायर किया था। तिरूपति ने संपत्ति के मालिकों को कुछ रकम अग्रिम तौर पर दी थी। श्री रंजीत कुमार ने यह भी आग्रह किया कि, किसी भी स्थिति में, भले ही प्रतिवादी नंबर 1 के मामले को सही मान लिया जाए, 19 वर्षों से इसने भूमि सीमा अधिनियम, 1976 की धारा 20 के तहत भूमि को विकसित करने की छूट के लिए आवेदन नहीं किया है। जिसके बिना संपत्ति का विकास करना संभव नहीं था। 19 मार्च, 1999 को भूमि सीलिंग अधिनियम, 1976 के निरस्त होने के बाद ही, प्रतिवादी नंबर 1 ने 19 मई, 1980 को पार्टियों के बीच कथित समझौते को लागू करने की मांग करते हुए उपरोक्त मुकदमा दायर किया। जब उक्त अधिनियम की धारा 20 के तहत छूट की आवश्यकता नहीं रह गई थी।

9. श्री रंजीत कुमार ने आग्रह किया कि प्रारंभ में जब प्रतिवादी

संख्या 1 की पहली अपील गुजरात उच्च न्यायालय में स्वीकार की गई थी, तो 2008 के सिविल आवेदन संख्या 2405 में एक आदेश भी पारित किया गया था कि यदि प्रश्न में संपत्ति थी किसी भी तरह से निपटा गया मामला अपील में निर्णय के अधीन होगा। विद्वान वकील ने आग्रह किया कि चूंकि उच्च न्यायालय ने अपने आदेश में संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 52 के सिद्धांतों को शामिल किया था और संपत्ति के हस्तांतरण पर कोई रोक नहीं थी, इसलिए 280 भूखंड विभिन्न खरीदारों को बेचे गए थे। पंजीकृत विक्रय विलेखों के माध्यम से और उन्होंने उन भूखंडों पर निर्माण शुरू कर दिया था, जिन्हें उन्होंने संभवतः राजकोट नगर निगम द्वारा स्वीकृत आवश्यक विकास अनुमति प्राप्त करने के बाद हासिल किया था। यह प्रस्तुत किया गया कि ऐसे बिंदु तक प्रथम अपील में पारित आदेशों के संबंध में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है। इसके बाद, जब 22 अप्रैल, 2008 को उसी आवेदन पर अंतरिम आदेश को संशोधित किया गया और संपत्ति के मालिकों को इसे बेचने से रोक दिया गया, तो उक्त संशोधन, हालांकि आवश्यक नहीं था, फिर भी बचाव करने में सक्षम था।

10. वास्तविक समस्या तब पैदा हुई जब 7 मई, 2008 को, 6 मई, 2008 को दायर 2008 के निषेधाज्ञा संख्या 5618 के लिए एक नए सिविल आवेदन पर, डिवीजन बेंच द्वारा एक आदेश पारित किया गया, जिसके न केवल स्थानांतरित लोगों के लिए गंभीर परिणाम हुए। बल्कि उस

ज़मीन के मालिकों के लिए भी जो मुकदमे में पक्षकार थे। ऊपर दिए गए आदेश में निर्देश दिया गया है कि विवादित भूमि पर कोई निर्माण न किया जाए और यदि कोई और निर्माण किया जाता है, तो प्रतिवादी नंबर 1 संबंधित पुलिस अधिकारियों से संपर्क करने के लिए स्वतंत्र होगा, जिन्हें रोकने के लिए तत्काल कदम उठाने का निर्देश दिया गया था। विवादित जमीन पर निर्माण श्री रंजीत कुमार ने इस बात पर जोर दिया कि जिस रहस्यमय तरीके से उक्त आवेदन को ऐसे अनिवार्य आदेश द्वारा निपटाया गया था, वह सभी कानूनी सिद्धांतों और यहां तक कि प्रक्रियात्मक कानून के विपरीत था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि 16.5.2008 को दायर नए आवेदन से निपटने की कोई स्वतंत्रता भी खंडपीठ द्वारा अपील में उत्तरदाताओं को नहीं दी गई थी और अगले ही दिन 7 मई, 2008 को, इस तरह के पारित करने का कोई कारण बताए बिना भी नहीं दिया गया था। आदेश में, इसने अंततः अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 2-7 और उन 280 हस्तांतरित लोगों के गंभीर पूर्वाग्रह के कारण इसका निपटारा कर दिया, जिन्हें भूखंडों की जानकारी दे दी गई थी और वह भी तब जब वे अपील में पक्षकार नहीं थे।

11. यह भी तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रथम अपील में उच्च न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा का इतना कठोर आदेश पारित करने से पहले सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश XXXIX नियम 1 और 2 में सन्निहित

सिद्धांतों पर कोई विचार नहीं किया गया था। श्री रंजीत कुमार ने प्रस्तुत किया कि प्रथम दृष्टया मामला बनाने, सुविधा और असुविधा के संतुलन, और अपूरणीय क्षति और हानि से जुड़े निषेधाज्ञा देने के बुनियादी सिद्धांतों को निषेधाज्ञा के आदेश पारित करते समय भी ध्यान में नहीं रखा गया था।

12. उपरोक्त के अलावा, श्री रंजीत कुमार ने मंडली रंगन्ना और अन्य बनाम टी. रामचंद्र [(2008) 11 एस सी सी 1] में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख किया, जिसमें अनुदान के संबंध में एक अतिरिक्त सिद्धांत प्रतिपादित करने की मांग की गई थी। न्यायसंगत राहत के माध्यम से निषेधाज्ञा का। इस न्यायालय ने माना कि तीन बुनियादी सिद्धांतों के अलावा, निषेधाज्ञा देते समय एक न्यायालय को पक्षों के आचरण को भी ध्यान में रखना चाहिए। यह देखा गया कि एक व्यक्ति जो लंबे समय तक चुप रहा और दूसरों को विशेष रूप से संपत्ति से निपटने की अनुमति दी, वह निषेधाज्ञा के आदेश का हकदार नहीं होगा। कोर्ट को सिर्फ इसलिए दखल नहीं देना चाहिए कि संपत्ति बहुत कीमती है। निषेधाज्ञा देने या अस्वीकार करने के उसके स्वरूप के आधार पर गंभीर परिणाम होते हैं और ऐसे मामलों से निपटने में न्यायालय को पक्षों के हितों की रक्षा के लिए सभी प्रयास करने चाहिए।

13. श्री रंजीत कुमार ने तर्क प्रस्तुत किया कि उन्होंने 1980 के

समझौते के तहत अपने कथित अधिकारों को लागू करने के लिए वर्ष 1999 में मुकदमा दायर किया था और संपत्ति के मालिकों को इससे निपटने की अनुमति दी थी और कुछ अधिकार तीसरे के पक्ष में बनाए गए थे। जब पक्षकारों के पास न्यायालयों द्वारा रोक लगाने का कोई आदेश नहीं था, तो उच्च न्यायालय ने उन व्यक्तियों को सुनवाई का अवसर दिए बिना जो आदेश से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने वाले थे, ऐसे कठोर परिणामों वाला अंतरिम आदेश देने में गलती की।

14. अपीलकर्ता और प्रतिवादी संख्या 2 से 7 की ओर से की गई दलीलों का विरोध करते हुए विद्वान वरिष्ठ वकील श्री सोली जे. सोराबजी ने प्रस्तुत किया कि जो धारणा दी गई है कि मारुति कॉर्पोरेशन 21 जून, 1989 को अस्तित्व में आया। प्रतिवादी संख्या 1 को स्पष्ट करना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि दूसरी ओर, प्रतिवादी नंबर 1 1980 में भी अस्तित्व में था, लेकिन एक अपंजीकृत साझेदारी के रूप में यह 21 जून 1989 को एक पंजीकृत साझेदारी बन गई। श्री सोराबजी ने तर्क प्रस्तुत किया कि मारुति कॉर्पोरेशन के अस्तित्व या मारुति कॉर्पोरेशन और संपत्ति के मालिकों के बीच निष्पादित समझौते की वैधता के प्रश्न पर साक्ष्य के आधार पर विचार करना होगा और जब तक मामले में कोई निर्णय नहीं आ जाता, यह केवल उचित था कि संपत्ति की यथास्थिति बनाए रखी जाए, खासकर जब बड़ी संख्या में हस्तांतरण किए जाने का आरोप लगाया गया

हो, जो प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा मांगी गई राहत को केवल कागजी राहत बना सकता है, यदि यह अंततः सफल हुए।

15. श्री सोराबजी ने यह भी तर्क दिया कि जब 6 मई, 2008 को निर्माण के खिलाफ प्रतिबंध आदेश के लिए आवेदन दायर करने की मांग की गई थी, तो न तो अपीलकर्ता और न ही अन्य उत्तरदाताओं ने इस तथ्य का खुलासा किया था कि इस तरह के लेनदेन पहले ही हो चुके थे और हस्तांतरणकर्ता ऐसे साधनों के आधार पर अपना निर्माण कार्य बढ़ाना शुरू कर दिया था।

16. श्री सोराबजी ने कष्टपूर्वक यह तर्क भी उठाया कि जबकि मुकदमे में सभी मुद्दों का फैसला वादी के खिलाफ किया गया था, परिसीमा से संबंधित मुद्दा, हालांकि, वादी के पक्ष में तय किया गया था और यह माना गया था कि मुकदमा विशिष्ट अनुपालन के अनुतोष के लिए मियाद से बाधित नहीं था। श्री सोराबजी ने प्रस्तुत किया कि चूंकि निषेधाज्ञा आदेश 7 मई, 2008 से लागू था और तब से 10 महीने से अधिक समय बीत चुका है, रोक के अंतरिम आदेश में हस्तक्षेप किए बिना, उच्च न्यायालय से पहली अपील जो लंबित है का निपटारा इससे पहले शीघता से करने का अनुरोध किया जा सकता है ।

17. श्री हुज़ेफ़ा अहमदी, जो 2008 की विशेष अनुमति याचिका

(सिविल) संख्या 12855 में प्रतिवादी नंबर 1- मारुति कॉर्पोरेशन के लिए उपस्थित हुए, ने श्री सोराबजी की दलीलों को स्वीकार करते हुए आग्रह किया कि मारुति कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी का निर्माण एक निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखकर मारुति निगम द्वारा किया गया था। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि विचाराधीन भूमि कृषि प्रकृति की थी और इसलिए, सहकारी समिति के अलावा किसी अन्य निकाय द्वारा इसका अधिग्रहण नहीं किया जा सकता था। इस तरह की रोक के कारण ही समीचीनता के आधार पर तिरूपति कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी बनाने का प्रस्ताव किया गया था और अभी तक पंजीकृत नहीं किया गया था। उन्होंने यह भी प्रस्तुत किया कि तिरूपति कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी द्वारा मालिकों को किया गया भुगतान मारुति कॉर्पोरेशन के खाते से किया गया था और परिणामस्वरूप, जब प्रस्तावित सहकारी सोसाइटी को भूमि सीमा अधिनियम, 1976 की धारा 20 के तहत छूट नहीं दी गई थी, तो प्रतिवादी ने कहा। नंबर 1 ने मारुति कॉर्पोरेशन के साथ किए गए समझौते के विशिष्ट प्रदर्शन के लिए एक अलग मुकदमा दायर किया और तिरूपति सहकारी हाउसिंग सोसाइटी द्वारा किए गए भुगतानों को मारुति कॉर्पोरेशन द्वारा किए गए भुगतानों के रूप में दिखाया गया। श्री अहमदी ने यह भी तर्क प्रस्तुत किया कि मारुति कॉर्पोरेशन भूमि सीलिंग अधिनियम, 1976 की धारा 20 के तहत छूट के लिए आवेदन नहीं कर सका, और

परिणामस्वरूप उसने उक्त अधिनियम निरस्त होने के बाद ही संविदा की विनिर्दिष्ट पालना के लिए मुकदमा दायर किया, जिससे इसकी आवश्यकता समाप्त हो गई। श्री अहमदी ने यह भी तर्क दिया कि जब तक अपीलकर्ता और संपत्ति के अन्य संयुक्त मालिकों और उनके हस्तांतरणकर्ताओं को प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष दो अपीलों के लंबित रहने के दौरान संपत्तियों से निपटने से उचित रूप से रोका नहीं जाता, तब तक अपीलें निरर्थक हो जाएंगी। एक बार निर्माण कार्य शुरू हो जाने के बाद उस स्थिति में वापस लौटना असंभव हो जाता है जब भूखंड अभी भी अविकसित थे।

18. संबंधित पक्षों की ओर से की गई दलीलों पर सावधानीपूर्वक विचार करने पर, जो परिदृश्य उभर कर सामने आता है वह यह है कि जहां एक ओर प्रतिवादी नंबर 1 मुकदमे के दौरान वाद भूमि की यथास्थिति बनाए रखने के पक्ष में है । इसके द्वारा दायर संविदा की विनिर्दिष्ट पालना मुकदमे के लंबित होने पर, अपीलकर्ता और अन्य संयुक्त मालिकों ने कथित तौर पर प्रतिवादी संख्या 1 द्वारा अपनी संपत्ति विकसित करने से रोके जाने पर सुविधा और असुविधा के संतुलन और अपूरणीय क्षति का मामला पेश किया है। नकली दस्तावेज़ का आधार उपरोक्त मुद्दों के साथ उन 280 हस्तांतरितियों का मुद्दा भी मिला हुआ है, जिन्हें मालिकों द्वारा भूखंड दिए गए हैं और जो निर्माण के विभिन्न चरणों में संरचनाओं को

खड़ा करके इसका उपभोग कर रहे थे। हमें ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जहां उक्त भूखंडों को उस समय प्राप्त करने के बावजूद जब मालिकों के खिलाफ निषेधाज्ञा लागू नहीं थी, हस्तांतरितियों, जो न्यायालय के समक्ष पक्षकार भी नहीं थे, एक अनिवार्य प्रकृति का निषेधाज्ञा जो उन्हें गंभीर रूप से प्रभावित करता है, लेकिन उन्हें सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना को एक अंतरिम आदेश द्वारा रोक दिया गया है।

19. हमें पिछले दिन 6 मई, 2008 को दाखिल 2008 के निषेधाज्ञा संख्या 5618 के सिविल आवेदन पर 7 मई, 2008 को पारित तीसरे आदेश के प्रभाव पर विचार करना होगा, जिसमें आदेश दिया गया था कि विवादित भूमि पर कोई निर्माण नहीं किया जाएगा। 280 स्थानांतरित लोगों पर जो अपना निर्माण कार्य बढ़ाने की प्रक्रिया में थे। जैसा कि आदेश से ही स्पष्ट होगा, भूमि के मालिकों को आवेदन का विरोध करने का अवसर दिए बिना ही इसे बहुत जल्दबाजी में पारित किया गया था। वास्तव में, आवेदन का निपटारा एक गुप्त आदेश द्वारा किया गया था जिसमें इसे पारित करने का कोई कारण भी नहीं था। खंडपीठ ने केवल यह संकेत दिया है कि आगे की जटिलताओं और मुकदमेबाजी की बहुलता से बचने के लिए, विवादित भूमि पर निर्माण न करने का आदेश पारित किया जा रहा है, यहां तक कि उन कई हस्तांतरितियों पर भी विचार किए बिना, जो इस तरह के आदेश से प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने वाले थे। यहां तक कि

यहां अपीलकर्ता और प्रतिवादी नंबर 2 से 7 तक को निषेधाज्ञा के लिए आवेदन में दिए गए बयानों और आरोपों का खंडन करने के लिए कोई हलफनामा दाखिल करने का अवसर नहीं दिया गया।

20. यह बिल्कुल स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय मामले के तथ्यों से पूरी तरह अनभिज्ञ था और प्रतिवादी नंबर 1 निगम द्वारा नियमित अंतराल पर दायर आवेदनों पर अलग-अलग समय पर अलग-अलग आदेश पारित किए।

21. 22 अप्रैल, 2008 के अंतरिम आदेश में प्रदान किया गया तर्क, कम से कम, कानूनी रूप से अस्थिर है। इससे पहले 29 फरवरी, 2008 को एक आदेश पारित करते हुए, लंबित वाद के सिद्धांत के आधार पर, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 22 अप्रैल, 2008 को अपने दूसरे आदेश में कहा कि जब पहली अपील स्वीकार की गई थी और विवाद में मामला था इस संबंध में कि विचाराधीन संपत्ति न्यायाधीन है, विचाराधीन संपत्तियों को बेचा नहीं जाना चाहिए और एक आदेश पारित किया गया जो प्रारंभिक आदेश के विपरीत था जो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम की धारा 52 को ध्यान में रखते हुए बनाया गया था ।

22. यह अच्छी तरह से स्थापित है, कि आदेश XXXIX नियम 1 और 2 सीपीसी के तहत निषेधाज्ञा का अंतरिम आदेश पारित करते समय,

न्यायालय को तीन बुनियादी सिद्धांतों पर विचार करना आवश्यक है, अर्थात्,

(i) प्रथम दृष्टया मामला;

(ii) सुविधा और असुविधा का संतुलन;

(iii) अपूरणीय क्षति और चोट।

22 अप्रैल, 2008 और 7 मई, 2008 को दूसरे और तीसरे अंतरिम आदेश पारित करते समय उच्च न्यायालय द्वारा उक्त सिद्धांतों में से किसी पर भी विचार नहीं किया गया है, न ही उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी संख्या 1 निगम लंबी चुप्पी 19 साल बाद मुकदमा दायर कर रहा है के तथ्यों को भी ध्यान में रखा है।

23. हमारे विचार में, 7 मई, 2008 को अंतरिम आदेश पारित करते समय, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि उसके आदेश का उन 280 हस्तांतरितियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, जिन्हें भूमि का कुछ हिस्सा पहले ही बेचा जा चुका था और जिन्होंने काम शुरू कर दिया था । उसके बाद निर्माण, विशेषकर तब जब वे अपील में पक्षकार भी नहीं थे, न ही निर्माण कार्य जारी रखने से रोके जाने से पहले उनकी बात सुनी गई थी। उनकी अनुपस्थिति में तीसरे पक्ष के अधिकारों को प्रभावित करने वाला ऐसा आदेश, क्योंकि वे कार्यवाही के पक्षकार नहीं थे, उक्त आदेश

पारित करने के तरीके को ध्यान में रखते हुए कायम नहीं रखा जा सकता है। एक आदेश के लिए एक आवेदन जिसके दूरगामी परिणाम होंगे, यहां तक कि उन लोगों को भी, जो मुकदमे में पक्षकार थे, उन्हें इसमें लगाए गए आरोपों का खंडन करने का अवसर दिए बिना उसे डिवीजन बेंच द्वारा अगले ही दिन निपटाने की मांग की गई थी। न्यायालय के ध्यान में लाया गया था कि 280 खरीददारों के पक्ष में सम्प्रेषण निष्पादित किया गया था। यह ऐसा मामला नहीं है, जहां अपीलकर्ता और अन्य सह-मालिकों ने उक्त 280 हस्तांतरितियों को भूखंड हस्तांतरित करने में न्यायालय द्वारा पारित किसी भी प्रतिबंध आदेश का उल्लंघन किया था। उक्त स्थानान्तरण ऐसे समय में किए गए थे जब अपीलकर्ता और संपत्ति के अन्य मालिकों के खिलाफ कोई निषेधाज्ञा या संयम आदेश नहीं था और जहां तक उक्त स्थानांतरण का सवाल है, एकमात्र आदेश जो उक्त आवेदन पर पारित किया जा सकता था। यह वह आदेश है जो संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 52 के सिद्धांतों के आधार पर 29 जनवरी, 2008 को पहली बार पारित किया गया था। इसलिए, हस्तांतरितियों पर प्रतिबंध आदेश को विधि की दृष्टि से खराब माना जाना चाहिए और इस कारण यह आपास्त किए जाने योग्य है।

24. जहां तक उन जमीनों का सवाल है जिन्हें 22 अप्रैल, 2008 के दूसरे आदेश द्वारा अपीलकर्ता और अन्य संयुक्त मालिकों को हस्तांतरित

करने से रोक दिया गया है, हमारा विचार है कि इस स्थिति में 22 अप्रैल, 2008 का आदेश, को अलग रखा गया है, प्रतिवादी नंबर 1 को पैसे के रूप में मुआवजा दिया जा सकता है और इसके कारण उसे कोई अपूरणीय क्षति या हानि नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि संपत्ति के मालिकों को इसे विकसित करने से रोका जाता है, तो उन्हें गंभीर पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि वे उक्त अवधि के दौरान अपनी भूमि के उपयोगकर्ता के लाभ से वंचित हो जाएंगे। सुविधा और असुविधा का संतुलन ऐसे निषेधाज्ञा के अनुदान के विरुद्ध है। प्रतिवादी नंबर 1 द्वारा दायर संविदा की विनिदिष्ट पालना के लिए मुकदमे की सफलता काफी हद तक उस समझौते की वास्तविकता के कमजोर सबूत पर निर्भर करती है जिसे ट्रायल कोर्ट के निष्कर्ष के बावजूद 19 साल बाद लागू किया गया कि मुकदम मियाद सीमा द्वारा वर्जित नहीं था।

25. प्रतिवादी नंबर 1 के आचरण का प्रश्न भी प्रासंगिक हो जाता है, क्योंकि 19 साल से अधिक समय तक अपने अधिकारों को लेकर सोए रहने के कारण, संपत्ति के मालिकों को इससे निपटने से रोकने की उसकी प्रार्थना असमान होगी। इस तथ्य को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए कि भूमि का एक बड़ा हिस्सा पहले ही 280 खरीददारों को दे दिया गया है जो उस पर निर्माण करने की प्रक्रिया में हैं।

26. इसलिए, हम गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा 22

अप्रैल, 2008 और 7 मई, 2008 को उसके समक्ष लंबित अपीलों पर पारित अंतरिम आदेशों को बनाए रखने में असमर्थ हैं।

27. तदनुसार, हम गुजरात उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा एफ ए नंबर 853 / 2008 एवं सीए नंबर 2405 और 5618/ 2008 में पारित 22 अप्रैल, 2008 और 7 मई, 2008 के आदेशों को पास्त करते हैं और दिनांक 29 फरवरी, 2008 के प्रारंभिक आदेश को यथावत बनाए रखते हैं। तदनुसार, अपीलों और संबंधित अंतर्वर्ती आवेदन पत्रों का निपटारा किया जाता है।

28. उच्च न्यायालय से अनुरोध है कि वह इस निर्णय में की गई किसी भी टिप्पणी से प्रभावित हुए बिना उसके समक्ष लंबित अपीलों का शीघ्रता से निपटारा करे।

29. कोस्ट के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जाएगा।

अपीलों का निपटारा किया गया।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी मोहन लाल सोनी (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।